जैन संमत व्याप्ति

□ दलसुख मालवणिया

जैनों के मत से तर्क स्वतंत्र प्रमाण है और उसका विषय व्याप्ति है।[१] अन्य दर्शन में तर्क को स्वतंत्र प्रमाण माना नहीं गया केवल जैन दर्शन में ही तर्क को स्वतंत्र प्रमाण माना गया है। तर्क को स्वतंत्र प्रमाण क्यों माना जाय इस की विशेष चर्चा जैनों के दार्शनिक ग्रन्थों में की गई है। व्याप्ति के विषय में जैन मान्यता क्या है उसी का विवरण यहां प्रस्तुत है।

प्रथम यह जानें कि व्याप्ति क्या है? पदार्थों के त्रैकालिक संबंध को व्याप्ति माना गया है। आचार्य विद्यानंद ने तर्क के प्रमाण्यर्क चर्चा के प्रसंग में कहा है —

सम्बन्धं व्याप्तितेऽर्थानां विनिश्चित्य प्रवर्तते।
येन तर्कः स संवादात् प्रमाणं तत्र गम्यते ॥४॥

तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक १.१३

प्रस्तुत प्रसंग में सर्वप्रथम बौद्धों की यह शंका कि संबंध तो वस्तुसत् नहीं, वह तो काल्पनिक है तो वह तर्क प्रमाण का विषय कैसे होगा? इसका निराकरण किया गया, हम जानते हैं कि धर्मकीर्ति ने संबंध परीक्षा[३] नामक ग्रन्थ लिखा है। उसमें उन्होंने संबंध का निराकरण किया है। अतएव यह जरूरी था कि संबंध भी वस्तुसत् है—इसकी स्थापना की जाय। अतएव जब जैनों ने संबंध को तर्क का विषय माना तो यह आवश्यक था कि वे संबंध की स्थापना करें। मैं यहां बौद्ध और जैनों की उस चर्चा का पूरा विवरण देना आवश्यक नहीं समझता हूं। जिज्ञासु उस चर्चा को अन्यत्र देख लें।[४] यहां तो आचार्य विद्यानन्द ने बौद्धों की ही पदार्थ या वस्तुसत्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पारमार्थिक वस्तुसत् की जो व्याख्या की है उसी का आश्रय लेकर उत्तर दिया है कि संबंध भी अर्थक्रियाकारी है अतएव पारमार्थिक वस्तुसत् है। और उसका प्रतिभास तर्क करता है अतएव वह अर्थप्रतिभासित है—

सम्बन्धो वस्तु सन्नर्थक्रियाकारित्वयोगतः।
स्वेष्टार्थतत्त्ववत्तत्र चिन्ता स्यादर्थभासिनी ॥८५ ॥

तत्त्वार्थश्लो. १.१३

संबंध कौनसी अर्थ क्रिया करता है? उसके उत्तर में कहा है कि संबंध ज्ञान जो होता है वही संबंध की अर्थ क्रिया है—

येयं संबन्धितार्थानां संबन्धवशवर्तिनी।
सैवेष्टार्थक्रिया तज्ज्ञैः संबन्धस्य स्वधीरपि ॥८६ ॥

तत्वार्थश्लो. १.१३

सति संबन्धोऽर्थानां संबन्धिता भवति नासतीति तदन्वय व्यतिरेकानुविधायिनी या प्रतीता सैवार्थक्रिया तस्य तद्विद्भिरभिमता यथा नीलान्वयव्यतिकानुविधायिनी क्वचिन्नीलता नीलस्यार्थक्रिया तस्यास्तत्साध्यत्वात्। संबन्ध ज्ञानं च संबन्धस्यार्थक्रिया नीलस्य नीलरानवत्। तदुक्तं-मत्या तावदियमर्थक्रिया यदुत स्वविषय विज्ञानोत्पाद नं नामेति।

तत्त्वार्थश्लो. पृ. १८४-५

तर्क का विषय जो संबंध या प्रतिबन्ध है वही व्याप्ति है, अविनाभाव है—या यों कहें कि अन्यथानुप्त्यात्ति

कालत्रयीवर्तिनोः साध्यसाधनयोर्गम्य-
गमकयोः सम्बन्धोऽविनाभावो व्याप्तिरित्यर्थः।

रत्नाकरावतारिका ३.७

हेतु के क्षसत्त्वादि तीन रूप और पांच रूप क्रमशः बौद्ध और नैयायिकों ने माने किन्तु जैनों ने कहा कि अन्यथानुपपन्तिरूप एक ही लक्षण हेतु का हो सकता है[५] अतएव अन्यथानुपपत्ति या अविनाभाव ही व्याप्ति है।

जैनों के इस मन्तव्य का मूलाधार धर्मकीर्ति का यह मत है—किन्तु संशोधन के साथ—

कार्यकारण भावाद्वा स्वभावाद्वा नियामकान्।
अविनाभावनियमोऽदर्शनान् न दर्शनात् ॥३३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवश्यं भावनियमः कः परस्याऽन्यथा परैः ।
अर्थान्तरनिमित्ते वा धर्मे वाससि रागवत् ॥३४ ॥

प्रमाणवार्तिक-स्वार्थानुमान-परिच्छेद

पक्षधर्मस्तदंशेन व्याप्तो हेतुस्त्रिधैव सः ।
अविनाभावनियमान् हेत्वाभासास्ततोऽ परे ॥३ ॥

जैनों का संशोधन यह है कि तादात्म्य और तदुत्पत्ति ये दो ही अविनाभाव के नियामक नहीं। बिना तादात्म्य-तदुत्पत्ति के भी सहभावी और क्रमभावी पदार्थों में अविनाभाव हो सकता है।[६]

अनुमान प्रयोग में भी जैनों का यह आग्रह नहीं है कि दृष्टान्त के आधार पर व्याप्ति का कथन किया जाय। इस विषय में चर्चा करते हुए जैनों ने व्याप्ति के दो प्रकारों की चर्चा की है—अन्तर्व्याप्ति और बहिर्व्याप्ति। अन्तर्व्याप्ति वह है जो प्रस्तुत साध्य और साधनगत है। और बहिर्व्याप्ति वह है जो प्रस्तुत साध्य और साधन के अतिरिक्त पदार्थों में भी देखी जाती है। यदि अन्तर्व्याप्ति सिद्ध है तो बहिर्व्याप्ति का उल्लेख दृष्टान्त द्वारा आवश्यक नहीं। अन्तर्व्याप्ति और बहिर्व्याप्ति का भेद करने के पीछे यह भी धारणा रही है कि कभी-कभी अन्वय दृष्टान्त के न होने पर भी व्याप्ति होती है और वह है अन्तर्व्याप्ति। असाधारण धर्म को लेकर साध्य जब सिद्ध करना होता है तब अन्वय दृष्टान्त का मिलना संभव नहीं होता। फिर भी असाधारण धर्म के बल पर साध्य की सिद्धि हो सकती है—इस मान्यता के आधार पर अन्तर्व्याप्ति का सामर्थ्य स्वीकृत हुआ है।

आचार्य हेमचन्द्र ने व्याप्ति का जो लक्षण दिया है वह है—

व्याप्ति र्व्यापकस्य व्याप्ये सति भाव
एव, व्याप्यस्य वा तत्रैव भावः ।

प्रमाणमीमांसा १.२.६

आचार्य हेमचन्द्र की यह व्याख्या आचार्य धर्मकीर्ति के हेतुबिन्दु की अर्चरटीका से लिया गया है। इसके विशेष विवरण के लिए प्रमाण मीमांसा के पंडित श्री सुखलालजी कृत भाषा टिप्पण को देखना चाहिए- पृ. ७५-८०।

टिप्पणी

१-अष्टशती और अष्टसहस्री पृ.-७४,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टस. विवरण पृ. ७३/१

तत्वार्थ श्लोक वार्तिक १.१३.९४-११९ ।

परीक्षामुख ३.११-१३ । प्रमेय कमलमार्तंड पृष्ठ- ३.३५३

प्रमाणनय तत्त्वालोक ३.७.८

रत्नाकरावतारिका टीका के साथ ।

२-संबोधि वर्ष अंक १ तथा इस चर्चा के विस्तार से निरुपण तत्वार्थ श्लोक वार्तिक में १.१३.८४-११९ में देखें ।

३-यह ग्रन्थ स्वतंत्र रूप से अभी प्रकाशित नहीं है । किन्तु वह करीब पूरा का पूरा जैन ग्रन्थों में उद्धृत करके उसका निराकरण किया गया है- देखें- प्रमेय कमल मार्तण्ड पृ. ५०४-५२० ।

स्याद्वाद रत्नाकर ८१४-८१७ ।

४-देखें टिप्पणी नं. ३ ।

५-न्यायावतार का. २२ ।

तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक १.१३.१२१, १.१३.१७८, १.१३.१२३-१८५, १.१३.१८६- १९३ ।

रत्नाकरावर्तारिका ३.११-१३ ।

६-प्रमेयकमलमार्तण्ड ३.१६.१८ । रत्नाकरावतारिका ३.७१-७६ । प्रमाणमीमांसा १.२.१० ।

७-न्यायावतार २० । तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक १.१३. १६१-१७४ ।

प्रमेय कमलमार्तण्ड ३.३७-४३ ।

रत्नाकरावतारिका ३.३३-३९ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org